ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-5* Issue-7* September- 2020
Innovation The Research Concept

भारतीय दर्शन में 'प्रत्यक्ष' की अवधारणा

Concept of 'Perception' in Indian Philosophy

Paper Submission: 12/09/2020, Date of Acceptance: 24/09/2020, Date of Publication: 25/09/2020

ललन कुमार
अतिथि व्याख्याता,
दर्शन शास्त्र विभाग,
राजेन्द्र मिश्र महाविद्यालय,
सहरसा, बिहार, भारत

सारांश

भारतीय दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण की अवधारणा अत्यंत प्राचीन तथा महत्वपूर्ण है। चार्वाकएजैन, बौद्ध, न्याय, वैशेषिक सांख्य, मीमांसा तथा वेदांत दर्शन में प्रत्यक्ष पर गहन विचार विमर्श हुआ है। सभी दर्शनों ने प्रत्यक्ष को प्रमाण स्वीकार करते हुए इसे सभी प्रमाणों का आधार बतलाया है ।प्रत्यक्ष हीवह साधन है जिस पर अन्य प्रमाण आश्रित हैं । प्रमा का महत्वपूर्ण साधन होने के कारण भारतीय प्रमाणशास्त्र में इसका स्थान सर्वोपरि है।

The concept of direct evidence is very ancient and important in Indian philosophy. There has been a deep discussion on Charvakaagen, Buddhism, Nyaya, Vaiseshika Samkhya, Mimamsa and Vedanta philosophy. All philosophies have accepted the evidence as direct, and have given it the basis of all the evidence. Direct is the means on which other evidence depends. Being an important instrument of prama, its place in Indian scripture is paramount.

मुख्य शब्द : भारतीय दर्शन, प्रकृति, द्वैतवादी दर्शन ।
Indian Philosophy, Nature, Dualistic Philosophy.

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञानमीमांसा में प्रत्यक्ष प्रमाण का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्यक्ष पर ही अन्य प्रमाण आश्रित है। इसके बिना कोई दार्शनिक विवेचन पूर्ण नही हो सकता क्योंकि दृश्य जगत की अनदेखी किसी भी सिद्वान्त–निर्माण मे नही किया जा सकता। दृश्य जगत को जानने का सर्वाधिक सरल साधन प्रत्यक्ष ही है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रत्यक्ष प्रमा का महत्वपूर्ण साधन है। व्यावहारिक विषयों की प्रमाणिकता को प्रत्यक्ष के द्वारा सिद्ध करना हमारा उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु भारतीय दर्शन में प्रत्यक्ष के विषय में दिए गए विभिन्न परिभाषाओं तथा प्रकारों का सहारा लिया गया है।

विषय विस्तार

भारतीय दर्शन में सभी दार्शनिक प्रत्यक्ष को प्रमा का वैध साधन मानते है। प्रत्यक्ष की परिभाषा विषयक प्रश्न पर विविध भारतीय दार्शनिको में मतैक्य नहीं है। प्रत्यक्ष शब्द दो शब्दों के मिलने से बना है–प्रति+अक्ष। ' प्रति ' का अर्थ है कि 'समक्ष' और 'अक्ष' का अर्थ है 'चक्षु' अर्थात आँख। यह प्रत्यक्ष का संकुचित अर्थ है कि जो आँख के सामने हो वही प्रत्यक्ष है।[1] व्यापक रूप से प्रत्यक्ष वह ज्ञान है जो इन्द्रियो के द्वारा प्राप्त हो। आँख,कान,नाक, जीभ, त्वचा और मन से होनेवाले ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा जाता है। इस तरह प्रत्यक्ष इन्द्रिय जन्य ज्ञान है। प्रत्येक दार्शनिक के द्वारा प्रत्यक्ष की अलग–अलग परिभाषाएँ दी गई है। साथ ही प्रमाणों की संख्या को लेकर भी भारतीय दर्शन के विभिन्न शाखाओं मे मतभेद है।

चार्वाक केवल और केवल प्रत्यक्ष को ही ज्ञान का एकमात्र साधन मानता है। चार्वाक के अनुसार यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति प्रत्यक्ष से सम्भव है। इस दर्शन की प्रमुख उक्ति है– प्रत्यक्षमेव प्रमाणम् अर्थात् प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है।[2]

प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए तीन बातों का होना आवश्यक है –1. इन्द्रिय 2. पदार्थ 3. सन्निकर्ष। प्रत्यक्ष इन्द्रियों के माध्यम से होता है क्योंकि इन्द्रियों के अभाव में हमें ज्ञान नही मिल सकता। इन्द्रियों के साथ–साथ पदार्थ का रहना भी आवश्यक है। बिना वस्तु के हम किसका ज्ञान प्राप्त करेगें ? इसलिए ज्ञान का विषय भी आवश्यक है। इन दोनों के अतिरक्त जो तीसरी चीज अति आवश्यक है वह है। सन्निकर्ष। इन्द्रियों और पदार्थों का संयोग ही सन्निकर्ष है। बिना

इसके प्रत्यक्ष ज्ञान असंभव है। जो ज्ञान प्रत्यक्ष से प्राप्त होते है उसके लिये किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। [3]

जैन दार्शनिको ने प्रत्यक्ष को अपरोक्ष ज्ञान की संज्ञा दी है। किन्तु वह ये भी कहते है कि जो ज्ञान साधारणतया अपरोक्ष माना जाता है वह केवल अपेक्षाकृत अपरोक्ष है। उनका कहना है कि इन्द्रिय या मन के द्वारा जो बाह्य या आभ्यांतर विषयो का ज्ञान होता है। वह अनुमान की अपेक्षा अवश्य अपरोक्ष होता है किन्तु ऐसे ज्ञान कोपूर्णतया अपरोक्ष नही माना जा सकता। क्योंकि यह इन्द्रिया मन के द्वारा होता है। जैन दर्शन पूर्णतः अपरोक्ष ज्ञान या प्रत्यक्ष ज्ञान उसी ज्ञान को मानता है जिसमें मन तथा अन्य इन्द्रियों की आवश्यकता न हो। जैसे– आत्मा और ज्ञेय वस्तु का साक्षात संबंध। जैन दर्शन मे इसे पारमार्थिक अपरोक्ष ज्ञान कहा है। उनके अनुसार जब तक कर्मजनित बाधाएँ रहती है तब तक ऐसा ज्ञान संभव नही होता है। सब कर्मो के नाश हो जाने पर ये बाधाएँ नष्ट हो जाती है और ऐसा ज्ञान संभव होता है।[4]

पारमार्थिक अपरोक्ष ज्ञान के तीन भेद बताए गए हैं– अवधि, मनः पर्याय तथा केवल। अवधि ज्ञान के द्वारा सीमित वस्तुओं का ही ज्ञान हो सकता है। इसके अन्तर्गत कहा गया है कि जब मनुष्य अपने कर्म को अंशतः नष्ट कर लेता है तो वह एक ऐसी शक्ति प्राप्त करता है जिसके द्वारा वह अत्यंत दूरस्थ, सूक्ष्म तथा अस्पष्ट द्रव्यो को भी जान सकता है। दूसरा ज्ञान मनः पर्याय ज्ञान है जिसके अन्तर्गत मनुष्य वर्तमान तथा भूत विचारों को जान सकता है। इससे दूसरो के मन में प्रवेश हो सकता है। अनंत ज्ञान को केवल ज्ञान कहते है। यह मुक्त जीवों को ही प्राप्त होता है।[5]

जैनों के अनुसार प्रत्यक्ष–ज्ञान की उत्पति निम्नलिखित क्रम से होती है। सबसे पहले इंद्रिय–संवेदन होता है। इस अवस्था को अवग्रह कहते है। इसमे केवल विषय का ग्रहण होता है। जैसे–मान लीजिए हम कोई ध्वनि सुनते है किंतु आरंभ में यह नही ज्ञात होता कि यह ध्वनि किसकी है। तब मन में एक प्रश्न उठता है कि यह ध्वनि किस वस्तु की है। इस अवस्था को ईहा कहते है। इसके बाद एक निश्चयात्मक ज्ञान होता है कि यह ध्वनि अमुक वस्तु की है। इसे 'आवाय' कहते है। 'आवाय' का अर्थ निश्चय है। इस तरह जो ज्ञान प्राप्त होता है उसका मन में धारण होता है। इसको धारण कहते है। [6]

बौद्ध सम्प्रदाय में प्रत्यक्ष के विषय मे दो मत देखने को मिलता है। इनमे से प्रथम मत योगाचर विज्ञानवादियों का है जबकि दूसरा मत शून्यवादी बौद्ध का है। जिसके प्रणेता क्रमशः आचार्य वसुबंधु और दिग्नाग तथा धर्मकीर्ति समझे जाते है।

विज्ञानवादी वसुबंधु ने प्रत्यक्ष की परिभाषा देते हुए प्रत्यक्ष को ततार्थद्विज्ञानम् कहा है। वसुबंधु प्रत्यक्ष को विज्ञान के द्वारा उत्पन्न ज्ञान की संज्ञा देते है। [7]

आचार्य दिग्नाग प्रत्यक्ष का स्वरूप निर्धारित करते हुए कहते है कि प्रत्यक्ष कल्पनारहित होता है। जिसमें वस्तु के नाम जाति आदि की योजना नही होती। धर्मकीर्ति के अनुसार कल्पनारहित अभ्रान्त ज्ञान प्रत्यक्ष है। इन आचार्यो के द्वारा कही गई बातों को परिभाषा की संज्ञा नही दी जानी चाहिए क्योकि बौद्ध मत परिभाषाओं का विरोधी है। इसलिए हम कह सकते है कि ये प्रत्यक्ष के विषय में उनके विचार है।[8]

वैशेषिक मत प्रत्यक्ष को इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष के रूप में स्वीकार करता है। इस मत के अनुसार चक्षु आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त मन भी एक ज्ञानेन्द्रियें है। अतः ज्ञानेन्द्रिय कुल छः है। इन छः ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा विषय के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष है।

न्याय दर्शन में प्रत्यक्ष की व्याख्या व्यापक रूप में की गई है। गौतम ने न्याय सूत्र में प्रत्यक्ष का लक्षण इस प्रकार किया है–प्रत्यक्ष इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न ज्ञान है जो अव्यपदेश्य अव्याभिचारी और व्यवसायात्मक होता है। वाचस्पति मिश्र ने अव्यपदेश्य पद से नाम जात्यादिकल्पनारहित निर्विकल्प प्रत्यक्ष का एवं व्यवसायात्मक पद से नामजात्यादिविशिष्ट सविकल्प प्रत्यक्ष का ग्रहण किया है। अव्याभिचारी पद अभ्रांत ज्ञान का सूचक है।[9]

इस तरह प्रत्यक्ष के दो भेद है–निर्विकल्पक और सविकल्पक। वस्तुतः ये प्रत्यक्ष के दो प्रकार या भेद नही है। अपितु ये प्रत्यक्ष की दो अवस्थाएँ है। न्याय दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञान है और ज्ञान सदा सविकल्पक होता है। अतः प्रत्यक्ष ज्ञान भी सविकल्पक ही होता है। किन्तु सविकल्पक बनने के पूर्व यह ज्ञान निर्विकल्पक अवस्था मे रहता है। इस तरह निर्विकल्पक प्रत्यक्ष ज्ञान की पूर्वावस्था है। निर्विकल्प और सविकल्प अवस्थायें घुली–मिली रहती हैं। ये वस्तुतः अविभाज्य है और इनका विभाग केवल बुद्वि–कृत है। हमें दूर पर एक सफेद वस्तु हमारी ओर आती हुई दिखाई देती है यह निर्विकल्पक अवस्था है जब वह वस्तु पास आती है तो उसका सफेद गाय के रूप मे प्रत्यक्ष होता है यह सविकल्पक ज्ञान ही प्रत्यक्ष ज्ञान है। पूर्व ज्ञान निर्विकल्पक संवेदन है तथा उतरज्ञान सविकल्पक प्रत्यक्ष है। निर्विकल्पक प्रत्यक्ष में द्रव्य, गुण, कर्म, जाति का पृथक निष्प्रकारक सम्वेदन होता है। किन्तु उनके विशेषण विशेष्य सम्बन्ध का ज्ञान नही होता। यह विशेषण विशेष्य सम्बधज्ञान सविकल्पक प्रत्यक्ष में होता है। सभी नैयायिकों ने इसे स्वीकार किया है।[10]

प्रत्यक्ष ज्ञान का जनक इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष छः प्रकार का होता है– संयोग, संयुक्त–समवाय, युक्तसमवेतसमवाय, समवाय, समवेत समवाय तथा विशेषणविषेस्य भाव।

संयोग

जब इन्द्रिय और वस्तु के बीच साक्षात सन्निकर्ष होता है। तो उसे सयोंग सम्बन्ध कहा जाता है जैसे ही आँख का सन्निकर्ष घट के साथ होता है वैसे ही घट का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।

संयुक्त समवाय

संयुक्त समवाय में इन्द्रिय का सीधा सम्बन्ध वस्तु के साथ न होकर, एक माध्यम के द्वारा होता है जैसे घड़े की लालिमा का ज्ञान।

संयुक्त समवेत समवाय

इसमें इन्द्रिय का वस्तु के साथ सम्बन्ध में माध्यमों के सहारे होता है। घड़े की लाली की जाति

लालपन का ज्ञान प्राप्त करने के लिये आँखो का साक्षात सम्बन्ध घड़े से होता है। घड़े का सम्बन्ध लाली से है और लाली उसकी जाति लालपन से सम्बन्धित है।

समवाय

चौथे प्रकार के सन्निकर्ष को समवाय कहा जाता है। इसमें इन्द्रिय का सन्निकर्ष एक ऐसी वस्तु से होता है जिसमे वस्तु एक गुण के रूप में इन्द्रिय मे समवेत हो जाता है। इसका उदाहरण है कर्णेन्द्रिय द्वारा शब्द का प्रत्यक्षीकरण होना। चूँकि कर्णेन्द्रिय का निर्मण आकाश से होता है जिसका गुण शब्द है, इसलिए कर्णेन्द्रिय में शब्द गुण के रूप मे समवेत है। अतः कर्णेन्द्रिय और शब्द के बीच समवाय सम्बन्ध निहित है।

समवेत समवाय

शब्द मे उसकी जाति (शब्दत्व) समवेत रहता है। जैसे ही हम कोई शब्द सुनते है वैसे ही यह जाति शब्दत्व भी प्रत्यक्ष होता है।

विशेष्य विशेषण

भाव–जब हम किसी वस्तु के अभाव का प्रत्यक्ष करते है तब स्वतः अभाव नही दिखाई देता है। घडा़ नही है–कहने के लिये यह जानना पड़ता है कि भूतल पर घड़े का अभाव है। यह भूतल विशेष्य है और घटाभाव विशेषण। चूँकि विशेषण को हम अपने आप मे न देखकर इसे अपने विशेष्य की विशेषता के रूप मे देखते है। इसलिये इस सन्निकर्ष को विशेष्य–विशेषण–भाव कहते है।[11]

उपरोक्त व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्द्रिय और वस्तु का सन्निकर्ष ही प्रत्यक्ष है।

न्याय दर्शन में प्रत्यक्ष को पुनः दो वर्गो मे बाँटा गया है–लौकिक या साधारण और अलौकिक या असाधारण प्रत्यक्ष। लौकिक प्रत्यक्ष भी दो प्रकार है, बाह्य और मानस। बाह्य प्रत्यक्ष पंचविध है जो पंचज्ञानेन्द्रियों द्वारा साध्य है। बाहय प्रत्यक्ष में चक्षु,रसना, घ्राण,त्वक, और श्रोत्र, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ बाह्य पदार्थो के सन्निकर्ष मे आती है तथा मन और इन्द्रिय का सन्निकर्ष होता है एवं आत्मा तथा मन का संयोग बना रहता है तब रूप, रस, गन्ध, स्पर्श,और शब्द का प्रत्यक्ष होता है। मानस प्रत्यक्ष मे मन या अन्तरिन्द्रिय का मनोभावो से सन्निकर्ष होता है एव आत्ममनः संयोग बना ही रहता है। तब ज्ञान, सुख, दुख, इच्छा,यत्न आदि का प्रत्यक्ष होता है।[12] अलौकिक प्रत्यक्ष तीन प्रकार के होते है–सामान्य लक्षण, ज्ञानलक्षण, और योगज। नैयायिक कहते हैं कि मनुष्य जाति का ज्ञान अलौकिक प्रत्यक्ष के द्वारा प्राप्त होता है। अर्थात मनुष्य मात्र का ज्ञान उसके सामान्य धर्म 'मनुष्यत्व'के द्वारा होता है। जब हम किसी व्यक्ति को देखकर उसे मनुष्य समझते है तो हमें उसमे अवश्य ही मनुष्यत्व का भी प्रत्यक्ष होता है, अन्यथा हम नहीं कह सकते कि प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा ही हम जानते है कि वह मनुष्य है। मनुष्यत्व का प्रत्यक्ष अनुभव होने का ही फल है मनुष्यत्व–धर्म–विशिष्ट सभी व्यक्तियों को जानना। इस प्रकार के प्रत्यक्ष–ज्ञान को सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष कहते है। क्योंकि सामान्य धर्म के द्वारा ही इस प्रकार प्रत्यक्ष होता है। अलौकिक प्रत्यक्ष के दूसरे भेद को ज्ञान–लक्षण कहते है। इस प्रत्यक्ष के अन्तर्गत एक इन्द्रिय किसी दूसरे के विषय का अनुभव कर सकता है। जो साधारतयः समभ्व नही है। उदाहरण स्वरूप हम प्रायः कहते है कि 'बर्फ ठंडी दिख पड़ती है' 'पत्थर ठोस दिख पड़ता है' लेकिन ठंडापन और ठोसपन स्पर्श के द्वारा देखा जा सकता है। लेकिन हमें पत्थर को देखते ही इसके ठोस होने का प्रत्यक्ष होता है। इसी ज्ञान–लक्षण प्रत्यक्ष कहते है। तीसरे प्रकार के अलौकिक प्रत्यक्ष को योगज कहते है। इसके द्वारा भूत तथा भविष्य गूढ तथा सूक्ष्म, निकटस्थ या दूरस्थ सभी प्रकार की वस्तुओं की साक्षात अनुभूति होती है। ऐसी अनुभूति केवल उन व्यक्तियों को हो सकती है जिन्होने अपने योगाभ्यास के द्वारा अलौकिक शक्ति प्राप्त की है।[13]

सांख्य दर्शन मे कहा गया है कि किसी विषय का इन्द्रिय के साथ संयोग होने में जो साक्षात होता है वह 'प्रत्यक्ष' कहलाता है। जब किसी विषय का हमारे इन्द्रियों के साथ संयोग होता है। उस विषय के कारण हमारे इन्द्रिय पर विशेष प्रकार का प्रभाव पड़ता है जिसका विश्लेषण और संश्लेषण मन करता है। इन्द्रिय और मन के व्यापार से बुद्वि पर प्रभाव पड़ता है और वह विषय का आकार ग्रहण करती है। परंतु विषय का आकार धारण करने पर भी बुद्वि को स्वतः उस विषय का ज्ञान नही होता क्योंकि बुद्वि जड़तत्व है। परंतु बुद्वि मे सत्वगुण का आधिक्य रहता है, जिसके कारण वह दर्पण की तरह पुरूष के चैतन्य को प्रतिबिंबित होने पर बुद्वि की अचेतनवृति उद्भासित हो उठती है और वह प्रकाशित हो प्रत्यक्ष ज्ञान के रूप मे परिणत हो जाती है।[14]

मीमांसा–दर्शन मे भी प्रत्यक्ष की विशद् विवेचना हुई है। मीमांसा के प्रमाण–विचार को वेदान्त दर्शन मे भी प्रामाणिकता मिली है। प्रभाकर और कुमारिल मीमांसा दर्शन के मूर्धन्य दार्शनिक है। प्रत्यक्ष के विषय मे इन दोनों के विचार मे भिन्नता है।

प्रभाकर के मतानुसार प्रत्यक्ष ज्ञान वह है जिसमें विषय की साक्षात प्रतीति होती है। उनके अनुसार किसी भी विषय के प्रत्यक्षीकरण में आत्मा, ज्ञान और विषय का प्रत्यक्षीकरण होता है। इस प्रकार प्रभाकर त्रिपुटी प्रत्यक्ष का समर्थक है। प्रत्यक्ष–ज्ञान तभी होता है जब इन्द्रिय के साथ विषय का सम्पर्क हो। प्रभाकर और कुमारिल दोनों पाँच बाह्येन्द्रियों तथा एक आन्तरिक इन्द्रिय को मानते है।

कुमारिल और प्रभाकर दोनों प्रत्यक्ष ज्ञान की दो अवस्थाएँ मानते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान की पहली अवस्था वह है जिसमें विषय की प्रतीति मात्र होती है। हमें इस अवस्था में वस्तु के अस्तित्व मात्र का आभास होता है। वह है केवल इतना ही ज्ञान होता है। उसके स्वरूप का हमें ज्ञान नही होता है। ऐसे प्रत्यक्ष ज्ञान को निर्विकल्प प्रत्यक्ष कहते है। प्रत्यक्ष ज्ञान की दूसरी अवस्था वह है जिसमें हमें वस्तु का स्वरूप उसके आकार–प्रकार का ज्ञान होता है। इस अवस्था में हम केवल इतना ही नही जानते कि वह वस्तु है बल्कि यह भी जानते हैं कि वह किस प्रकार की वस्तु है। उदाहरणस्वरूप 'वह मनुष्य है' 'वह कुता है''वह राम है' इत्यादि। ऐसे प्रत्यक्ष ज्ञान को सविकल्प प्रत्यक्ष कहते है।[15]

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष के बिना दर्शन का अस्तित्व नही है। प्रत्यक्ष ही वह

साधन है जिसके द्वारा समस्त संसार का अवलोकन किया जाता है। यही प्रत्यक्ष अन्य सभी प्रमाणों का आधार है। प्रत्यक्ष बिना अनुभव, शब्द,उपमान,अर्थापति तथा प्रमाण के अन्य साधन का कोई महत्व नही है। प्रत्यक्ष ही ज्ञान प्राप्त करने के सभी साधनों का मूल है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *भारतीय ज्ञान मीमांसा, नीलिमा सिन्हा, पृष्ठ संख्या– 49*
2. *भारतीय दर्शन की रूपरेखा प्रो. हरेंद्र प्रसाद सिन्हा पृष्ठ संख्या– 81*
3. *वही पृष्ठ संख्या– 171*
4. *भारतीय दर्शन, दत्त एवं चटर्जी, पृष्ठ संख्या –102*
5. *वही, पृष्ठ 103*
6. *वही, 103*
7. *भारतीय ज्ञान मीमांसा, नीलिमा सिन्हा, पृष्ठ संख्या 49*
8. *वही, पृष्ठ संख्या –50*
9. *भारतीय दर्शन, चंद्रधर शर्मा, पृष्ठ संख्या –177*
10. *वही, पृष्ठ संख्या– 178*
11. *भारतीय दर्शन की रूपरेखा, प्रोफेसर हरेंद्र प्रसाद सिन्हा ,पृष्ठ संख्या –172*
12. *भारतीय दर्शन, दत्त एवं चटर्जी, पृष्ठ संख्या –187*
13. *वही, पृष्ठ संख्या–188*
14. *वही, पृष्ठ संख्या –267*
15. *भारतीय दर्शन की रूपरेखा, प्रो. हरेंद्र प्र. प्रसाद सिन्हा, पृष्ठसंख्या– 280*